विषय	हिंदी
प्रश्नपत्र सं. एवं शीर्षक	**P2: मध्यकालीन कविता - 1**
इकाई सं. एवं शीर्षक	**M11: ढोला-मारू रा दूहा**
इकाई टैग	**HND_P2_M11**

निर्माता समूह	
प्रमुख अन्वेषक	**प्रो. गिरीश्वर मिश्र** कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : misragirishwar@gmail.com
प्रश्नपत्र समन्वयक	**प्रो. कृष्ण कुमार सिंह** अधिष्ठाता, साहित्य विद्यापीठ महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : kks5260@gmail.com
इकाई लेखक	**डॉ. चन्द्रदेव सिंह यादव** एसोशिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, मानविकी एवं भाषा संकाय, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली ईमेल: cyadav@jmi.ac.in
इकाई समीक्षक	**प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित** प्रोफेसर (सेवानिवृत्त), हिंदी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र) ईमेल : suryadixit123@gmail.com
भाषा संपादक	**प्रो. कृष्ण कुमार सिंह** अधिष्ठाता, साहित्य विद्यापीठ महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : kks5260@gmail.com

पाठ का प्रारूप

1. पाठ का उद्देश्य
2. प्रस्तावना
3. कथानक
4. लोकगाथा के रूप में 'ढोला-मारू रा दूहा'
5. प्रेम एवं श्रृंगार का स्वरूप
6. काव्य-कला
7. काव्य-रूप
8. 'ढोला-मारू रा दूहा' की भाषा
9. निष्कर्ष

1. पाठ का उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरांत आप-

- 'ढोला-मारू रा दूहा' काव्य को जान सकेंगे।
- प्रेम के किस रूप को महत्व दिया गया यह जान सकेंगे।
- क्षेत्र की संस्कृति और लोक भाषा के प्रयोग से परिचित हो सकेंगे।
- आदिकालीन ग्रंथ के रूप में इसका मूल्यांकन कर सकेंगें।

2. प्रस्तावना

'ढोला-मारू रा दूहा' हिन्दी की एक प्रसिद्ध काव्य कृति है। यह केवल कविता की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि इसका महत्व लोक संस्कृति की दृष्टि से भी है। ग्यारहवीं शताब्दी की यह रचना धीरे-धीरे मौखिक परंपरा की कविता बन गई। इस कृति के बहुत से दोहे लुप्त हो गए, जिससे बीच-बीच में कथा खंडित हो गई। इसी से सत्रहवीं शताब्दी में जैन कवि कुशल लाभ ने इसमें चौपाइयां जोड़कर इसे व्यवस्थित किया। इसमें प्रेम और श्रृंगार का उदात्त वर्णन हुआ है। इस रचना का बाद में हिन्दी कविता पर जबर्दस्त प्रभाव पड़ा है।

3. कथानक

'ढोला-मारू रा दूहा' ढोला और मारवणी की प्रेमकथा है। कछवाहा वंश के नल नरवर में और पिंगल पूगल में राज करते थे। एक बार पूगल में भीषण अकाल पड़ा, जिसके कारण पिंगल सपरिवार नरवर चले गए। नल ने उनको अपने यहां ठहराया। नल के तीन वर्षीय बेटे ढोला को देखकर पिंगल की रानी रीझ गई और उसने अपनी डेढ़ वर्षीय बेटी मारवणी का विवाह ढोला के साथ कर दिया। अकाल ख़त्म होने पर पिंगल पूगल चला गया और मारवणी को अपने साथ लिवा ले गया, क्योंकि वह बहुत छोटी थी। ढोला के जवान होने पर नल ने पूगल को दूर जान कर और रास्ता भयानक समझ कर ढोला का दूसरा विवाह मालवा की राजकुमारी मालवणी से कर दिया। ढोला से उसके पहले विवाह की बात नहीं बताई गई।

मारवणी के जवान होने पर पिंगल ने ढोला को बुला लाने के लिए कई दूत भेजे, लेकिन कोई ढोला के पास नहीं पहुंच सका। मालवणी को ढोला के पहले विवाह की बात मालूम थी, इसलिए ढोला के पास पूगल से संदेश लाने वाले को वह मरवा देती थी। एक दिन मारवणी ने ढोला को सपने में देखा। उसकी याद में वह दुखी रहने लगी। उसी समय नरवर के घोड़ों के सौदागर से पूगल को ढोला के दूसरे विवाह का पता चला। पिंगल ने ढाढ़ियों से ढोला को संदेश भेजा। मारवणी ने भी ढाढ़ियों से ढोला के पास अपना संदेश भेजा। ढाढ़ियों ने ढोला को सारा वृत्तांत सुनाया। यह सुनकर ढोला चल पड़ा, लेकिन मालवणी ने ढोला को रोक लिया। एक रात ढोला मालवणी को छोड़कर पूगल की ओर चल पड़ा। ढोला को न पाकर मालवणी दुखी हुई। उसने अपने तोते को पति को वापस लाने के लिए भेजा।

तोते के अकेले लौट आने पर मालवणी निराश हो गई। ढोला आगे बढ़ गया। रास्ते में ऊमर सूमरा के चारण ने उसे बहकाया लेकिन वीसू नामक दूसरे चारण ने उसे मारवणी का सच्चा हाल बताया, जिससे ढोला की चिंता दूर हो गई।

ढोला के ससुराल पहुँचने पर मारवणी की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। कुछ दिन वहाँ रह कर ढोला मारवणी के साथ नरवर के लिए चल पड़ा। रास्ते में एक जगह सोती हुई मारवणी की साँप के काटने से मृत्यु हो गई। लेकिन जोगी-जोगिन की कृपा से वह ज़िन्दा हो गई।

ऊमर सूमरा ने मारवणी को छीन लेने के लिए छल किया लेकिन असफल रहा। ढोला मारवणी के साथ सकुशल नरवर पहुँच गया।

4. लोकगाथा के रूप में 'ढोला-मारू रा दूहा'

'ढोला-मारू रा दूहा' की संरचना लोककाव्य वाली है। डॉ. नगेन्द्र द्वारा संपादित 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में इसे लोकभाषा काव्य बताया गया है। (पृ. 92) ग्यारहवीं सदी की इस रचना के बहुत से दोहे लुप्त हो गए थे, जिससे कथा की श्रृंखला बीच-बीच में खंडित हो गई थी। इसी से सत्रहवीं शताब्दी में कुशललाभ ने कुछ चौपाइयाँ जोड़ कर इसे विस्तार दिया। (वही, पृ. 92) डॉ. बच्चन सिंह ने अपने इतिहास ग्रंथ 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास' में इसे लोककाव्य परम्परा का काव्य कहा है। (पृ. 52) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे कल्पित काव्य की श्रेणी में रखा है। (हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 128)

'ढोला-मारू रा दूहा' के संपादक हैं- रामसिंह, सूर्यकरण पारीक और नरोत्तमदास स्वामी। उन्होंने इसे 'लोकगीत' (बैलेड) कहा है। बैलेड का अर्थ लोकगीत या गीतकाव्य नहीं, बल्कि गाथा या गाथागीत होता है। लोकगीत छोटा और गाथागीत बड़ा होता है। लोकगीत में किसी विशेष भाव-विचार या अनुभूति का सूक्ष्म, सघन और प्रभावोत्पादक वर्णन किया जाता है। इसलिए वह लोकगीत की तरह हर जगह मर्मस्पर्शी नहीं होता है।

लोकगाथा एक कथात्मक रचना होती है जो गीतों में की गई होती है। दूसरे शब्दों में लोकगाथा में गेयता और कथानक दोनों होते हैं। इसके विपरीत लोकगीत में कथानक का अभाव होता है। इस तरह 'ढोला-मारू रा दूहा' एक लोकगाथा है अथवा गाथापरक लोककाव्य है।

लोकगाथाएं कई प्रकार की होती हैं, जैसे- प्रेमपरक, रोमांचपरक और वीररसात्मक। सभी लोकगाथाओं में किसी न किसी प्रवृत्ति की प्रधानता होती है, लेकिन उनमें प्रेम, वीरता और रोमांच आदि गौण रूप से मौजूद होते हैं। 'ढोला-मारू रा दूहा' में लोकगाथा की ये सभी विशेषताएं पाई जाती हैं। ढोला और मारवणी का अल्पायु में विवाह। बड़ा होने पर ढोला की शादी मालवणी से होना। मारवणी का स्वप्न में ढोला को देखना। मारवणी का प्रिय से मिलन के लिए उत्कंठित होना। मारवणी के पिता राजा पिंगल का बार-बार दूत भेजना और नरवर से कोई संदेश न मिलना। फिर नरवर के घोड़ों के सौदागर से ढोला के दूसरे विवाह की बात मालूम होने के बाद राजा द्वारा भेजे गए ढाढ़ियों से मारवणी का ढोला को संदेश भेजना, मारवणी का संदेश मिलते ही ढोला का पूगल के लिए रवाना होना। किसी तरह ढोला का पूगल जाना। ऊमर सूमरा के चारण द्वारा ढोला को बहकाया जाना कि मारवणी बूढ़ी हो गई है। लेकिन दूसरे चारण से मारवणी की वास्तविकता जान कर ढोला का खुश होना, पिफर ससुराल पहुँच कर मारवणी से मुलाकात। ढोला का मारवणी के साथ नरवर जाना। रास्ते में ऊमर सूमरा द्वारा विघ्न डालना। जंगल में साँप द्वारा डँस लिए जाने से मारवणी की मृत्यु। ढोला का विलाप, जोगी द्वारा मारवणी को ज़िन्दा करना। फिर दोनों का सकुशल नरवर पहुँचना। सौतियाडाह से मालवणी और मारवणी में अनबन। ये सभी घटनाएं 'ढोला-मारू रा दूहा' को एक प्रेमपरक लोकगाथा सिद्ध करती हैं।

5. प्रेम एवं श्रृंगार का स्वरूप

'ढोला-मारू रा दूहा' एक प्रेम काव्य है। इस प्रकार के प्रेमकाव्य की परंपरा संस्कृत से शुरू होती है। कालिदास का मेघदूत इसी तरह का काव्य है। हिन्दी में दसवीं शताब्दी में एक गद्य-पद्य मिश्रित रचना मिलती है। उसका नाम है-'राउलवेल'। इसके कवि रोडा ने इस रचना की नायिका राउल का नखशिख वर्णन आकर्षक ढंग से किया है। श्रृंगार की यह परंपरा आगे के अनेक काव्यग्रंथों में विकसित हुई। राउलवेल श्रृंगार और वीर रस के ताने-बाने से बुना गया है। लेकिन 'ढोला-मारू रा दूहा' की रचना केवल श्रृंगार और प्रेम को प्रमुखता देते हुए की गई है।

'ढोला-मारू रा दूहा' में व्यक्त प्रेम स्वकीय है। इसमें दाम्पत्य प्रेम का सुन्दर, सरस, और उदात्त वर्णन हुआ है। इसका कवि लोक-मन को जानता था, वह सामाजिक रीति-नीति और संस्कारों से परिचित था। इसीलिए उसने प्रेम और श्रृंगार का वर्णन करते हुए कहीं पर भी मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया है। उसने लगभग 30-32 दोहों में मारवणी का रूप-वर्णन किया है। मारवणी का चेहरा उगते हुए सूरज जैसा है। वह गजगामिनी है। उसकी जाँघें कदलीगर्भ जैसी, कमर सिंह की तरह, दाँत हीरों की तरह, अधर मूँगे जैसे, भृकुटी चंद्रमा जैसी टेढ़ी है। वह हरिणाक्षी है। उसके अधर, उरोज और नयन मधु की तरह मीठे हैं। वह द्राक्षा जैसी है-

अहर, पयोहर, दुइ नयण, मीठा जेहा मख्ख।
ढोला एही मारुई जाणे मीठी दख्ख।।

-ढोला-मारू रा दूहा, 470

इस पूरे सौन्दर्य वर्णन में प्रचलित काव्य रूढ़ियों को देखा जा सकता है। वीसू के रूप-वर्णन में पुनरुक्ति है।

कवि ने चंपा के रंगवाली मारवणी के अंग-प्रत्यंग का रूढ़िबद्ध वर्णन करने के बाद उसके रूप की सात्विकता की ओर इशारा किया है। मारवणी गति में गंगा, बुद्धि में सरस्वती और शील-स्वभाव में सीता है। स्त्रियों में मारवणी की बराबरी करने वाली दूसरी कोई नहीं है-

गति गंगा, मति सरसती, सीता सील सुभाइ।
महिलां सरहर-मारुई अवर न दूजी काइ।।

-ढोला-मारू रा दूहा, 451

यह है मारवणी का रूप-सौन्दर्य। इसमें तनिक भी मांसलता नहीं है।

मारवणी जवान हो गई तो उसके पिता पिंगल ने ढोला को बुला लाने के लिए अनेक दूत भेजे, लेकिन वे ढोला तक नहीं पहुँच सके। अन्ततः पिंगल ने ढाढ़ियों को नरवर भेजा। ढाढ़ियों से मारवणी ने भी ढोला के नाम संदेश भेजा। उन संदेशों में इस बात का खास तौर से उल्लेख किया गया है कि मारवणी पूरी तरह जवान हो गई है। अतः हे प्रिय आओ और मेरे यौवन का भोग करो-

ढाढी, एक संदेसड़उ कहि ढोला समझाइ।
जोबण आँबउ फलि रह्यउ, साख न खायउ आइ।।

-ढोला-मारू रा दूहा, 117

कवि ने कितने सधे हुए ढंग से मारवणी की कामेच्छा को प्रस्तुत किया है। यह प्रतीकात्मक है।

कवि ने दोनों के मिलन को दूध-पानी का मिलन बताया है-

मन मिलिया तन गड्डिया, दोहग दूरि गयाह।
सज्जन पाणी खीर ज्यूँ खिल्लोखिल्ल थयाह।।

कवि ने प्रतीकात्मक ढंग से ढोला और मारवणी के मिलन का वर्णन किया है। एक जगह उसने रति को युद्ध की संज्ञा दी है। मदोन्मत्त ढोला और मारवणी सेज की तरफ इस तरह चले मानो दो राजा धरती के लिए युद्ध करने जा रहे हों-

दोउ मयमंत सुजाँण सेज दिसि बाहुड़इ।
जाणे धरती-काज असप्पति आहुड़इ।।
-ढोला-मारू रा दूहा, 566

संस्कृत से लेकर हिन्दी के कई कवियों ने रति को युद्ध के रूपक के रूप में पेश किया है। कवि ने इस प्रसंग में अष्टयाम का वर्णन किया है। अष्टयाम के अन्तर्गत नवदम्पति के आठों पहर के विलास का वर्णन किया गया है। इसमें यह दोहा कितना स्वाभाविक है, देखिए-

चौथे प्रहरै रैंण कै कूकड़ मेल्ही रालि।
धण संभालै कंचुवौ, प्री मूँछाँरा बालि।।

अर्थात् भोर में जब मुर्गे ने बाँग दी तो प्रिया अपनी चोली सँभालने लगी और प्रिय मूँछों के बाल को।
एक लोक कवि द्वारा स्त्री-पुरुष के मिलन का यह सहज वर्णन प्रशंसनीय है।
प्रेम को परिभाषित करते हुए कवि ने अपनी असमर्थता व्यक्त की है। उसके लिए प्रेम अकथनीय है। वह गूँगे के सपने की तरह है जिसको जान करके वह बता न पाने की स्थिति में पछताता रहता है-

अकथ कहाणी प्रेम की किण सूँ कही न जाइ।
गूँगा का सुपना भया, सुमर सुमर पिछताइ।।
-ढोला-मारू रा दूहा, 159

कवि उस सात्विक प्रेम की बात करता है जो प्रिय के दूर होने पर भी बना रहता है।
इसी संदर्भ में थोड़ी-सी चर्चा श्रृंगार के वियोग पक्ष की भी कर लेना जरूरी है।

इसमें तीन स्थानों पर विरह का वर्णन किया गया है- पहले मारवणी का, फिर मालवणी का और अन्त में ढोला का। सपने में प्रिय को देखकर मारवणी काम संतप्त होने लगी। ढाढी से संदेश भिजवाते समय उसने कहा कि प्रिय से कहना कि तुम नहीं आए तो तुम्हारी पत्नी तुम्हारे वियोग में जलकर राख हो गई। अब तुम जाकर उसकी राख को ढूँढ़ो। (ढोला-मारू रा दूहा- 112) लेकिन उसका यह कहना कितना साहसपूर्ण है कि यदि तुम फागुन या चैत्र तक नहीं आओगे तो मैं कार्तिक में फसल कट जाने पर खुद ही घोड़ों पर जीन कसूँगी। (वही- 146)
मारवणी कहती है कि हे प्रिय यौवन रूपी धन लुट जाने पर तुम आकर क्या करोगे? (वही- 177) अन्त में वह कहने लगी कि अगर प्रिय नहीं आया तो मैं इस शरीर को जला दूँगी ताकि मेरा प्रिय बादल बनकर जल बरसाए और आग को बुझा दे-

यह तन जारी मसि करूँ, धूँआ जाहि सरग्गि।
मुझ प्रिय बद्दल होइ करि, बरसि बुझावहु अग्गि।।
-ढोला-मारू रा दूहा, 181

दूसरी तरफ मालवणी का प्रेम और विरह है। निर्बाध रूप से पति-सुख भोग रही मालवणी को जब पता चला कि उसका प्रिय दूसरी स्त्री के लिए उससे दूर चला गया तो उसकी क्या मनोदशा हुई होगी, इसे आसानी से समझा जा सकता है। मालवणी की इस स्थिति का एक मर्मस्पर्शी वर्णन देखिये-

सज्जण चाल्या हे सखी, वाज्या विरह निसाँण।

हाथे चूड़ी खिस पड़ी, ढीला हुआ सँधाण।।
-ढोला-मारू रा दूहा, 349

पति चला गया। यह जानकर मालवणी के अंग प्रत्यंग ढीले पड़ गए, जिससे उसके हाथ की चूड़ी खिसक गई। फिर तो संयोग के समय की सारी बातों को याद कर उसे दुख होने लगा। उसे खुशियों से भरा महल श्मशान जैसा भयानक लगने लगा। वह इतना रोई, इतना रोई कि उसकी साड़ी और चोली भींग गई जिससे वह निचोड़ने लायक हो गई।

इस कृति में कवि ने ढोला के विरह का भी वर्णन किया है। मारवणी की मृत्यु के बाद ढोला विलाप करने लगा और कहने लगा कि मैं भी मारवणी की चिता में जलकर मर जाऊँगा। कवि ने पुरुष के विरह को भी संक्षेप में किन्तु अत्यंत सजीव ढंग से व्यक्त किया है।

6. काव्य-कला

'ढोला-मारू रा दूहा' में लोककाव्य जैसी सहज भावाभिव्यक्ति देखने को मिलती है। यह कृति एक ओर लोककाव्य से जुड़ी हुई है तो दूसरी ओर परिनिष्ठित साहित्य से। इसीलिए इसमें संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश की अनेक प्रवृत्तियां और रूढ़ियां पाई जाती हैं। दोहों में लिखित यह एक प्रबंधात्मक रचना है। इसमें वर्णनात्मक प्रसंग कम नहीं हैं, पर उन सारे प्रसंगों में एक सहज काव्यात्मकता पाई जाती है। कवि का कौशल श्रृंगार और प्रेम संबधी प्रसंगों में विशेष रूप से दिखाई देता है। मारवणी की देहयष्टि और उसके सौंदर्य का वर्णन करते समय कवि ने पारंपरिक उपमानों का सहारा लिया है, जैसे- मारवणी की नाक तोते जैसी, मुख चंद्रमा जैसा, जाँघें कदली जैसी, कमर सिंह जैसी और वेणी नागिन जैसी है, उसके उरोज और नितंब मांसल हैं वह गजगामिनी है कोकिल बैनी है आदि आदि। इसलिए ऐसे प्रसंगों में उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है। उपमा का एक उदाहरण देखिए-

सुन्दरि, सोवन वर्ण तसु, अहर अलत्ता रंगि।
केसरि लंकी, खीण कटि, कोमल नेत्र कुरंगि।।
-ढोला-मारू रा दूहा, 87

सौदागर ने मारवणी को देखा। मारवणी उसे ऐसी लगी मानो संध्या के समय बादल में बिजली चमकी हो। यह उत्प्रेक्षा का सुन्दर उदाहरण है-

मारू दीठो अउझकइ, जाँणि खिवी घण संझ।
-ढोला-मारू रा दूहा, 86

इसमें उत्प्रेक्षा का सबसे अधिक प्रयोग किया गया है। कहीं-कहीं अनुप्रास, रूपक और दृष्टांत अलंकार भी दिखाई पड़ते हैं। रूपक का एक उदाहरण देखिए-

फौज घटा, खग दामणी, बूँद लगइ सर जेम।
पावस पिउ विण वल्लहा, कहि जीवीजइ केम।।
-ढोला-मारू रा दूहा, 255

अर्थात् बादलों की घटाएं फौज हैं और बिजली तलवार। वर्षा की बूँदें बाण की तरह लगती हैं। हे प्रिय, वर्षा ऋतु में तुम्हारे बिना कैसे जिन्दा रहूं?

दृष्टांत का एक उदाहरण देखिए-

प्रीतम बीछुड़ियाँ पछइ, मुई न कहिजइ काइ।
चोली केरे पाँन ज्यूँ, दिन दिन पीली थाइ।।

-ढोला-मारू रा दूहा, 403

तोते ने ढोला से कहा कि प्रिय से बिछुड़ने पर वह क्यों न मरी हुई कही जाएगी। वह मजीठ के पत्तों की तरह दिन-दिन पीली पड़ती जा रही है।

इसके कुछ वर्णन तो बहुत स्वाभाविक और सहज हैं, जैसे मारवणी का पपीहे से यह कहना कि तेरे बोल मुझे अच्छे नहीं लग रहे हैं। तेरा पी-पी बोलना ऐसा ही है जैसे शरीर को नमक लगा कर काटना। कुररी पक्षी से पाँख माँगना और यह भरोसा दिलाना कि तुम्हारे पंखों को लगाकर मैं सागर लाँघ कर प्रिय से मिलूंगी और उसके बाद तुम्हारी पाँखें वापस कर दूंगी, बहुत स्वाभाविक है-

कुंझा, द्यउ नइ पंखड़ी, थाकउ विनउ वहेसि।
सायर लंघी प्री मिलउँ, प्री मिलि पाछी देसि।।

-ढोला-मारू रा दूहा, 621

कवि ने कामसंतप्त मारवणी द्वारा भेजे गए संदेश को प्रतीकात्मक ढंग से व्यक्त किया है।

मारवणी और मालवणी के विरह वर्णन में स्वाभाविकता है। मारवणी के वियोग और संयोग के चित्र अधिक भावपूर्ण बन पड़े हैं। इसके सौंदर्य वर्णन में पुनरावृत्ति दिखाई देती है। जैसा कि हम जानते हैं, साहित्य में श्रृंगार और प्रेम वर्णन में कहीं-कहीं अतिशयोक्तिपूर्ण बातें भी की जाती हैं। इस काव्य कृति में भी कहीं-कहीं अतिशयोक्तिपूर्ण कथन दिखाई पड़ते हैं। मारवणी के विरह का एक अतिशयोक्तिपूर्ण चित्र देखिए-

मारवणी कहती है कि मैं रात भर रोती रही। आँसुओं से मेरी साड़ी भीग गई। मैंने उसे निचोड़ा। ऐसा मैं रात भर करती रही। साड़ी निचोड़ते-निचोड़ते मेरे हाथों में छाले पड़ गए-

राति ज रूँनी निसह भरि सुणी महाजनि लोइ।
हाथाली छाला पड़्या, चीर निचोइ निचोइ।।

-ढोला-मारू रा दूहा, 156

तात्पर्य यह है कि 'ढोला-मारू रा दूहा' काव्य-कला की दृष्टि से एक उत्कृष्ट कृति है। इसमें लोकगीतों वाली सादगी के साथ-साथ साहित्य वाली प्रौढ़ता भी दिखाई पड़ती है।

ढोला मारू में विरह के संदर्भ में प्रकृति का वर्णन हुआ है। यह वर्णन लगभग पारंपरिक होते हुए भी हृदयग्राही है।

7. काव्य-रूप

'ढोला-मारू रा दूहा' एक प्रबंध काव्य है। लेकिन यह दोहे जैसे मुक्तक छंद में रचा गया है। इसलिए इसकी कथा की कड़ियों को जोड़ने के लिए कहीं-कहीं उसके प्रसंगों की कल्पना करनी पड़ती है। इस कृति का रचनाकार काव्य मर्मज्ञ

था और प्रबंधकाव्य की खूबियों से परिचित था। इसीलिए उसने प्रबंधकाव्य की सभी युक्तियों का प्रयोग किया है। यह उसकी कविताई का ही कमाल है कि दोहा जैसे छंद में उसने पूरी कथा कह डाली है। इसमें चार तरह के छंदों का प्रयोग किया गया है- दोहा, सोरठा, गाहा और चंद्रायणा। इसमें सर्वाधिक संख्या दोहों की है। सोरठे बहुत कम हैं। गाहा और चंद्रायणा तो नाम मात्र के हैं।

दोहे का शास्त्रीय रूप 13-11 मात्राओं वाला है जिसके अन्त में गुरु-लघु का विधान है। लेकिन 'ढोला-मारू रा दूहा' में दो दोहे ऐसे हैं जिनका अन्त गुरु-गुरु से हुआ है। इसमें 13-10, 13-10 मात्राओं का विधान है-

सखियाँ राँणी सूँ कहइ, मारू मन माँणी।
साल्हवकुँवर पासइ विना पदमिणि कुमलाँणी।।

दोहे के बाद सबसे अधिक संख्या सोरठों की है। इसमें 12 सोरठे हैं।

गाहा प्राकृत का मशहूर छंद है, लेकिन अपभ्रंश और हिन्दी के कवियों ने भी इसका प्रयोग किया है। 'ढोला-मारू रा दूहा' में 4 गाहा छंद प्रयुक्त हुए हैं। इसका पहला ही छंद गाहा है जो 29-29 मात्राओं के क्रम में है। गाहा दो चरणों का छंद है। जैसे-

पूगलि पिंगल राऊ, नल राजा नरवरे नयरे।
अदिट्ठा दूरिट्ठा ये सगाई दईय संजोगे।।

'ढोला-मारू रा दूहा' में 2 चंद्रायणा छंद हैं। यह छंद हिन्दी के लिए अपिरिचित-सा है। इसमें चार चरण होते हैं। जैसे-

दोउ मयमंत सुजाँण सेज दिसि बाहुड़इ।
जाणे धरती-काज असप्पति आहुड़इ।।
अहरे अहर लगाइ तने तन मेलिया।
(परिहाँ) जाँणि क गाँधी-हाट जुवाँने भेलिया।।

8. 'ढोला-मारू रा दूहा' की भाषा

राजस्थानी का विकास लगभग 1000 ई. के आस-पास हुआ। 'ढोला-मारू रा दूहा' ग्यारहवीं शताब्दी की राजस्थानी भाषा की रचना है। इसकी वर्तनी उस समय के अपभ्रंश से मिलती है। उसमें ह्रस्व 'ए' और 'ओ' वर्तमान थे। 'ऐ' और 'औ' को 'अइ' और 'अउ' के रूप में लिखा जाता था, जैसे-

भरइ पलट्टइ भी भरइ भी भरि भी पलटेहि।
ढाढी हाथ सँदेसड़उ धण विललंती देह।।

ढोला-मारू की भाषा समय-समय पर बदलती रही। इसलिए यह सर्वत्र एक जैसी नहीं है। इसमें प्राचीन राजस्थानी और नवीन राजस्थानी दोनों के रूप मिलते हैं। इसमें गुजराती, पंजाबी, सिंधी के शब्द तथा खड़ी बोली और ब्रज के रूप भी पाए जाते हैं। इसमें नज़र, साहिब, सलाम, हराम और जहाज़ जैसे अरबी तथा सौदागर और मिहर (दया) जैसे फारसी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। वास्तव में इस काव्य कृति के दोहों की भाषा में पाई जाने वाली विविधता का कारण इसकी लोकप्रियता है। काव्य रसिकों के हाथों में पड़कर बहुत से प्राचीन दोहे नवीन रूप में ढल गए और कुछ दोहे लुप्त हो गए।

9. निष्कर्ष

ग्यारहवीं शताब्दी में रचित 'ढोला-मारू रा दूहा' एक लोक काव्य है। राजस्थानी भाषा में लिखित यह काव्य केवल राजस्थान का ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य का एक महत्वपूर्ण काव्य है। आदिकाल में इस तरह के कई श्रृंगारिक काव्य रचे गए, लेकिन इसमें लोक साहित्य और साहित्य का जैसा मेल दिखाई पड़ता है, वैसा अन्यत्र विरल है।